१०. कबीर का सामाजिक चिंतन

कबीर को मूलतः वैयक्तिक साधना का प्रचारक माना जाता है। इसलिए उन्हें शुद्ध रूप से समाज सुधारक नहीं कहा जा सकता है। डॉ० रामचन्द्र तिवारी का विचार है कि "वे समाज रचना के लिए किसी प्रकार के सुधारवादी आन्दोलन के पुरस्कर्त्ता न होकर मानव आत्मा की मुक्ति के लिए आध्यात्मिक संघर्ष करने वाले साधक थे।" कबीर को अनेक रूपों में प्रतिष्ठा देने वाले आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत भी इसी प्रकार का है "कबीर ने ऐसी बहुत सी बातें कहीं हैं जिनसे (अगर उपयोग किया जाय तो) समाज सुधार में सहायता मिल सकती है, पर इसलिए उनको समाज सुधारक समझना गलती है। वस्तुतः वे व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे। समष्टि-वृत्ति उनके चित्त का स्वाभाविक धर्म नहीं था।" डॉ० रामकुमार वर्मा उपर्युक्त मतों से अलग अपना मत प्रस्तुत करते हैं "जब तक समाज व्यवस्थित नहीं होता, तब तक किसी विचार या सिद्धान्त का प्रसार संभव नहीं हैं। यही कारण है कि कबीर अनुभूति सम्पन्न कवि और सन्त होते हुए भी समाज की अनिश्चित परिस्थितियों के प्रति उदासीन न रह सके और वे भक्ति आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्त्तकों में होते हुए भी समाज सुधार में अग्रणी बने।"

आचार्य द्विवेदी ने बहुत बल देकर कहा है कि "कबीरदास का भक्त रूप ही उनका वास्तविक रूप था। इसी केन्द्र के इर्द-गिर्द उनके अन्य रूप स्वयमेव प्रकाशित हो उठे हैं। वे कभी सुधार करने के लिए नहीं चले। समाज ने अन्याय कर रखे थे कि जो स्वयं साधना नहीं

Scanned with CamScanner

संगठन की मूलभूत आवश्यकता है। एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के साथ कुछ मान्यताओं, परम्पराओं एवं समान उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सहयोग करने की बात दूर रही यदि वह अगल-बगल रह भी नहीं सकता तो समाज की क्या स्थिति होगी, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। धर्म और समाज का सम्बन्ध बहुत गहरा है। प्रायः धर्म समाज को जोड़ता है किन्तु कभी-कभी ऐसी परिस्थिति भी आ जाती है कि धर्म समाज को तोड़ने लगता है। कबीर के समय में सामाजिक टूटन का मुख्य कारण था धर्म। राजनीतिक समस्या भी एक तरह से धार्मिक समस्या बन गयी थी। राज्य-सिंहासन पर हिन्दू आसीन हो या मुसलमान सामान्य जनता के लिए क्या फर्क पड़ता है। फर्क तो तभी पड़ता है जब शासक अपने मान्य धर्म को विकसित और प्रचारित करने में अपनी पूरी शक्ति लगाने लगता है। वह जनता के एक वर्ग को मात्र इसलिए प्रताड़ित एवं पीड़ित करता है क्योंकि उसका धर्म शासक के धर्म से अलग है। इस तरह की धार्मिक खींच-तान तथा सुविधा-असुविधा के तनाव में समाज की मान्यताएँ भी प्रश्नों के घेरे में आ जाती हैं।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था को धार्मिक व्यवस्था से बहुत अलग करके नहीं देखा जा सकता है। जहाँ जाति-भेद, वर्ण-भेद धार्मिक व्यवस्था का ही परिणाम है, जहाँ पति-पत्नी का सम्बन्ध आध्यात्मिक बन्धन है, जहाँ व्यक्ति, परिवार और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का मूलाधार धर्म है, वहाँ की सामाजिकता धार्मिकता से अलग कैसे हो सकती है। ब्राह्मण छुआ-छूत को इसलिए बढ़ावा देता है कि वह इसे अपना धर्म मानता है। यही नहीं एक वधिक जानवरों का वध इसलिए करता है कि यह उसका धर्म (ईश्वर द्वारा निर्धारित कार्य) है। शूद्रों को सभी वर्गों की सेवा इसलिए करनी चाहिए कि ईश्वर ने उसे इसी के लिए पृथ्वी पर भेजा है। जिस देश में गरीबी-अमीरी, सुख-दुख, जाति-पाँति, ऊँच-नीच सभी कुछ ईश्वर की इच्छा से निर्धारित है उस देश में यदि किसी भी तरह का सामाजिक परिवर्तन ले आना है तो उसके लिए धार्मिक परिवर्तन की दिशा में ही प्रयत्न करना होगा। आज के बौद्धिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपर्युक्त बातें आधारहीन भले ही हों किन्तु मध्ययुगीन परिप्रेक्ष्य में वे शत-प्रतिशत सत्य हैं। कबीर जैसा ओजस्वी तथा विद्रोही रचनाकार जब इस तरह का भाव व्यक्त कर सकता है तो भ्रम की गुंजाइश कहाँ रह जाती है–

पूरब जनम हम बाभन होते ओंछे करम तप हीना।
रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीना।।

इसलिए यह कहना कि कबीर का व्यक्तित्व मुख्यतः भक्त का है समाज सुधार उनके लिए गौण है समीचीन नहीं है। कबीर जिस तरह के भक्त हैं वह स्वयं में ही एक नवीन सामाजिक पद्धति एवं मानवीय समता की स्वीकृति तथा पक्षधरता का प्रमाण है। यह भक्ति मार्ग ऐसा है जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का अलगाव नहीं है, सभी एक हैं और केवल मनुष्य हैं। यदि इनकी कोई उपाधि है, तो वह भी एक ही है वह है संत या भक्त। इस साधना में ब्राह्मणों का वर्चस्व नहीं है क्योंकि भक्तों का गुरु ब्राह्मण नहीं होता, कोई संत या भक्त ही होता है। ब्राह्मण के महत्त्व को अस्वीकार करना, सभी वर्गों के लिए एक नये आध्यात्मिक मार्ग की खोज करना, वेद, शास्त्रों में प्रतिपादित उन मान्यताओं को अस्वीकार करना, जो ब्राह्मणों के महत्त्व को स्वीकार करती हैं आदि युग-युग से निर्मित सामाजिक व्यवस्था पर गहरी चोट हैं। ''शास्त्र और सम्प्रदायों का निषेध करके कबीर केवल एक नयी भक्ति पद्धति को ही नहीं जन्म दे रहे थे बल्कि ढोल पीट-पीटकर जता रहे थे कि मुक्ति का मार्ग ब्राह्मण के

Scanned with CamScanner

घर से होकर नहीं जाता—जैसा कि युगों-युगों से प्रचारित किया जा रहा है। ब्राह्मण, वेद तथा वेदमार्ग के महत्त्व को अस्वीकार करके कबीर ने वस्तुतः सामंती व्यवस्था के मर्म पर आघात किया था। उनके भक्त रूप को महत्त्व देना, प्रकारांतर से उनके सामाजिक विद्रोह को हाशिए

Scanned with CamScanner